International Journal of Leading Research Publication (IJLRP)

E-ISSN: 2582-8010 ● Website: www.ijlrp.com ● Email: editor@ijlrp.com

पूँजीवाद की शुरूआत एक विषय के रूप में

चन्द्रप्रकाश कारपेंटर

शोधकर्ता
विषय - इतिहास
झालावाड़ रोड खानपुर जिला झालावाड़ राजस्थान

परिचय

यूरोप में पूँजीवादी व्यवस्था के उदय के लक्षण पन्द्रहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में दिखलाई देने पड़ गये थे। इस व्यवस्था को उत्पादन प्रविधियों तथा संगठन की उन्नति ने जन्म दिया। लोहे के उत्पादन का बढ़ना इस प्रक्रिया का एक महत्त्वपूर्ण कारण माना जाता है। सोने, चाँदी, ताँबे, टीन और सीसे जैसी मूल्यवान धातुओं का उत्पादन भी बढ़ने लगा। इसके मूल में भी खनन प्रविधियों में सुधार आना था। इसी समय में जलचलित मशीनों और पनचरखी का आविष्कार हुआ। नयी खोजों और आविष्कारों ने पन्द्रहवीं सदी के अन्त से लेकर सत्रहवीं शताब्दी के अन्त तक की महान् भौगोलिक खोजों का मार्ग प्रशस्त किया। नये देशों को खोजा गया। वहाँ उपनिवेश बसाये गये। एशियाई देशों के साथ व्यापारिक सम्पर्क पुनः स्थापित हुआ। इन सबके परिणामस्वरूप निर्यात की जाने वाली वस्तुओं की माँग बढ़ी। बड़े पैमाने पर उत्पादन की आवश्यकता अनुभव की गई। परन्तु मध्ययुगीन उद्योग के संगठनात्मक स्वरूप ऐसे नहीं थे कि आविष्कारों या सुधारों को प्रोत्साहित करते। फिर भी, इस दिशा में आगे कदम बढ़ाया गया। उत्पादन प्रक्रियाओं का कई अलग-अलग कार्यों अथवा प्रक्रियाओं में विभाजन किया गया, जिनमें से प्रत्येक को अब तक एक अलग श्रेणी (गिल्ड) पूरा करती थी। जैसेकि वस्त्र उद्योग में बुनकरों, कातने वालों, रंगसाजों आदि की श्रेणियाँ स्थापित हो गई। अर्थात् वस्त्र उद्योग में श्रम का विभाजन हो गया। यह पूँजीवाद की दिशा में उठाया गया कदम था।

अन्य परिवर्तनों का योगदान इसी के साथ-साथ दूसरे परिवर्तन भी दृष्टिगत होनेलगे थे। अब कुछ अधिक सम्पन्न व्यापारी एक या दो श्रेणियों से उनका माल थोक में खरीदने लगे और उसे जहाँ उसकी माँग होती थी, बेचने की व्यवस्था भी करने लगे। इससे उन्हें मुनाफा होने लगा। तब उन्होंने धीरे-धीरे कच्चे मालों और श्रम-साधनों को खरीदना शुरू कर दिया और श्रेणी सदस्य उन पर आश्रित होने लगे। व्यापारी लोग दस्तकारों को कच्चे माल और औजार-चरखे, करघे, रंग आदि उपलब्ध कराने लगे। उन्हें उनके काम के लिये यथासम्भव कम से कम परिश्रमिक देते और उनके द्वारा बनायी चीजों को अधिक से अधिक कीमत पर बेचने का प्रयास करते। अर्थात् व्यापारी वर्ग कारीगरों को उत्पादन में उनके द्वारा लगाये गये श्रम के केवल कुछ भाग की कीमत चुका कर शेष पैसा अपने लिये रख लेता था। बाजार में बेचा गया तैयार माल व्यापारी वर्ग को मुनाफा या लाभ देता है; जबकि व्यापारी वर्ग उत्पादन में किसी प्रकार का श्रम नहीं करता। वह दूसरे के श्रम तथा अपनी पूँजी के सहारे श्रम करने वालों से कहीं अधिक मुनाफा कमा लेता है। ऐसा उद्यमकर्त्ता पूँजीपति कहलाता है। इस प्रकार, पूँजीवाद का आधार है; अधिक मुनाफा प्राप्त करने के लिये बड़े पैमाने पर उत्पादन और उत्पादन के साधनों- पूँजी एवं उपकरण पर व्यक्तिगत स्वामित्व। उत्पादन करने वाले श्रमिक को मात्र कुछ वेतन अथवा पारिश्रमिक से ही सन्तोष करना पड़ता है। उसके द्वारा तैयार की गई वस्तुओं पर उसका कोई स्वामित्व नहीं होता। प्रोफेसर अ.ज. मानफ्रेद के शब्दों में, "उद्यमकर्ता कारीगरों

को उत्पादन में उनके द्वारा लगाये श्रम के केवल कुछ भाग के लिये ही देकर शेष पैसा अपने लिये रख लेते थे। उद्यमकर्त्ता इस प्रकार जिस श्रम को चुरा लेता है; वह अतिरिक्त या बेशी श्रम कहलाता है। बेशी श्रम द्वारा उत्पादित और बाद में बाजार में बेचा गया तैयार माल उद्यमकर्त्ता को अतिरिक्त मूल्य, अर्थात् मुनाफा या लाभ देता है।... उद्यमकर्त्ता दस्तकारों और ग्रामीण कारीगरों के काम में जो धन लगाता है, वह पूँजी-बेशी मूल्य लाने वाला धन कहलाता है और स्वयं इस तरह का उद्यमकर्त्ता पूँजीपति कहलाता है। बेशी मूल्य पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली का एक आवश्यक लक्षण है। यही वह लक्ष्य है, जिसकी तरफ पूँजीपति का समस्त कार्यकलाप निर्देशित होता है।

पूँजीवाद की प्रारम्भि अवस्था में पूँजीपति अलग-अलग उत्पादकों से उनका तैयार माल खरीदकर बेचा करता था। फिर उसने कारीगरों को कच्चा माल और औजार उधार देना शुरू किया और यह शर्त रखी कि वे अपना उत्पाद सिर्फ उसी को बेचेंगे। इसके बाद वे उत्पादन के अधीक्षण में प्रत्यक्ष भाग लेने लगे। अब वे किसी विशेष इमारत या स्थान पर अपनी देखरेख में उत्पादकों से काम कराने लगे। यह कारखाना अथवा फैक्टरी व्यवस्था का प्रारम्भिक स्वरूप था, जहाँ कारीगर लोग छोटे-बड़े औजारों की सहायता से अपने हाथ से काम करते थे और उद्यमकर्त्ता समूचे काम पर निगरानी रखता था। इनमें काम करने वाले कारीगर एक प्रकार से श्रमिक हीं थे जो अपने श्रम को बेचकर अपनी जीविका चलाते थे। मुनाफा तो पूँजीपति की जेब में चला जाता था। मुनाफे की भूख ही पूँजीपति की प्रेरक शक्ति थी वह हर समय अधिक से अधिक मुनाफा प्राप्त करने तथा मुनाफे की राशि को पुनः निवेश करने के उचित अथवा अनुचित साधनों की खोज में लगा रहता था।

अधिक मुनाफा कमाने के लिये अधिक उत्पादन करना जरूरी था। अतः उपकरणों अथवा औजारों को उन्नत किस्म का बनाया जाने लगा। ज्यों-ज्यों अच्छी किस्म के औजार श्रमिकों के हाथ में आने लगे, त्यों-त्यों कम समय में अधिक उत्पादन होने लगा। चूँकि पूँजीवादी व्यवस्था में प्रारम्भ से ही प्रतिस्पर्धा रही इसलिए उत्पादन प्रणाली सदा उत्पादन साधनों में महत्त्वपूर्ण सुधारों और उत्पादन प्रविधियों में क्रान्ति के साथ जुड़ी रही है। इसकी वजह से ही मशीनों का निर्माण सम्भव हो पाया और आधुनिक फैक्टरी व्यवस्था अस्तित्व में आ पाई।

1 पूँजीवाद : अर्थ एवं परिभाषा - बहुत-से विद्वान् "पूँजीवाद" शब्द को ही अस्पष्ट मानते हैं; अतः इसको परिभाषित करना सरल नहीं है। सामान्यतः पूँजीवाद का अर्थ एक ऐसी आर्थिक व्यवस्था से लिया जाता है जिसमें उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व होता है तथा जिसमें निजी लाभ के उद्देश्य से पूर्ण प्रतियोगिता के आधार पर साधनों का प्रयोग किया जाता है। लॉक्स एवं हूट्स के शब्दों में, "पूँजीवाद आर्थिक संगठन की ऐसी प्रणाली है जिसमें निजी सम्पत्ति पाई जाती है तथा मानव निर्मित और प्रकृति-प्रदत्त पूँजी का प्रयोग निजी लाभ के लिये किया जाता है।" एक अन्य विद्वान् पीगू के मतानुसार, "यह वह प्रणाली है जिसमें अर्थव्यवस्था के उत्पादन साधनों का अधिकांश भाग पूँजीगत उद्योगों में लगा हुआ हो, तथा एक पूँजीगत उद्योग वह है जिसमें उत्पादन के भौतिक उपकरण निजी व्यक्तियों द्वारा खरीदे या किराये पर लिये जाते हैं तथा उनके आदेशों के अनुसार इस प्रकार उपयोग किया जाता है कि उसकी सहायता से उत्पन्न वस्तुओं और सेवाओं को लाभ पर बेचा जा सके।" गोल्डमेन ने पूँजीवाद को व्यापक अर्थ में परिभाषित करते हुए कहा है कि, "किसी भी समुदाय को पूँजीवाद कहा जा सकता है, यदि वह परम्परागत कृषि, शिकार एवं मछलीपालन की व्यवस्था से ऊपर निकल गया हो तथा उत्पादन वृद्धि के लिये पूँजीगत उपकरणों का प्रयोग कर रहा हो।" डी.एम. राइट का मानना है कि, "पूँजीवाद आर्थिक संगठन की ऐसी प्रणाली है जिसमें निजी सम्पत्ति पाई जाती है तथा मानव निर्मित और प्रकृति प्रदत्त पूँजी का प्रयोग निजी लाभ के लिये किया जाता है।"

• उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि पूँजीवाद एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें निजी आधारों पर व्यक्तियों और इकाइयों के द्वारा आर्थिक गतिविधियों का संचालन किया जाता है और जिनका मुख्य उद्देश्य व्यक्तिगत लाभ की प्राप्ति है।

पूँजीवाद के लक्षण

व्यक्तिवाद पूँजीवाद का मुख्य आधार और प्रेरक शक्ति है। पूँजीवादी संस्थाओं का स्वरूप व्यक्तिवादी होता है। राज्य के वैधानिक नियन्त्रण के अन्तर्गत कोई भी व्यक्ति किसी भी व्यवसाय को चुनने में स्वतन्त्र होता है।

2. इस व्यवस्था के अन्तर्गत सामान्यतः राज्य आर्थिक क्षेत्र में "अहस्तक्षेप की नीति" का पालन करते हुए व्यक्ति की आर्थिक गतिविधियों में कम से कम हस्तक्षेप करता है। व्यक्ति या उद्यमी भी अपनी आर्थिक गतिविधियों के संचालन में सरकारी हस्तक्षेप को पसन्द नहीं करते।

3. पूँजीवादी व्यवस्था में राष्ट्रीयकरण अथवा सार्वजनिक उपक्रमों को विशेष स्थान नहीं दिया जाता। अधिकांश उद्योग-धन्धों पर निजी स्वामित्व होता है।

4. पूँजीवादी व्यवस्था का एक मुख्य लक्षण अधिक से अधिक लाभ या मुनाफा कमाना है। इसलिये इस व्यवस्था में श्रमिकों का शोषण होता है।

5. प्रतिस्पर्धा, पूँजीवाद की एक विशिष्ट विशेषता है। क्रेता, विक्रेता, उत्पादक और श्रमिकों में परस्पर प्रतिस्पर्धा की भावना चलती रहती है। इस हेतु वे संघों का निर्माण करते हैं, जो अपने वर्गीय हितों की रक्षा में लगे रहते हैं।

6. पूँजीवादी व्यवस्था में उपभोक्ता को भी महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। वह उत्पादन को नियन्त्रित करता है। उसकी पसन्द को ध्यान में रखकर ही वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है। यदि वह किसी वस्तु को नापसन्द कर देता है तो फिर उस वस्तु का उत्पादन स्वतः ही बन्द हो जाता है।

7. पूँजीवादी व्यवस्था में चन्द व्यक्तियों के पास देश की आर्थिक सत्ता केन्द्रित हो जाती है। परिणामस्वरूप समाज मुख्यत दो वर्गों - धनिक और निर्धन में विभाजित हो जाता है और इससे वर्ग-संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती है।

8. देश की आर्थिक स्थिति पर नियन्त्रण प्राप्त करने के बाद पूँजीपति वर्ग देश की राजनीति को भी नियन्त्रित करने का प्रयास करते हैं। देश की विदेश नीति को प्रभावित करने में भी उनकी अहम् भूमिका होती है।

9. पूँजीवाद में साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद और नवउपनिवेशवाद के तत्त्व निहित होते हैं। इसीलिये लेनिन ने कहा था, "साम्राज्यवाद, पूँजीवाद की अन्तिम अवस्था है।"

पूँजीवाद के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह न केवल एक आर्थिक प्रणाली है, अपितु एक राजनीतिक विचारधारा भी है 14

प्रारंभिक पूंजीवादी व्यवस्था

21200 ई. से 1750 ई. के मध्य समय को प्रारम्भिक पूँजीवादी व्यवस्था के नाम से पुकारा जाता है। इसके प्रारम्भिक चरण में हम कृषि तथा भूमि पर आधारित सामन्ती समाज का वर्चस्व देखते हैं। इसके अन्तर्गत किसान को अपने उत्पादन का बेशी भाग कम कीमत पर बेचने के लिये बाध्य किया जाता था। परन्तु मुद्रा के बढ़ते प्रचलन ने इस

स्थिति में थोड़ा बदलाव ला दिया। अब किसान अपने परिवार के भरण-पोषण के लायक उत्पादन को अलग रखकर शेष उत्पादन को बाजार में नगद में बेचने लगा। इसके साथ ही हमें एक और बात यह दिखाई देती है कि समाज में भूमिहीन लोगों की संख्या में भारी इजाफा होने लगा और ये लोग अपनी जीविका के लिये अपनी श्रमशक्ति को बेचने के लिये विवश हुए।

सामन्ती व्यवस्था में सोने-चाँदी का अभाव नहीं था। सामन्तों के पास काफी धन था। परन्तु उन्होंने इस धन का निवेश मुनाफा कमाने के लिये नहीं किया। इसका उपयोग सैन्य शक्ति को सुदृढ़ बनाने अथवा भोग-विलासिता के लिये ही किया जाता रहा। परन्तु व्यापार-वाणिज्य और उद्योग-धन्धों के विकास के साथ स्थिति में बदलाव आ गया और अब धन अथवा पूँजी का निवेश केवल लाभ कमाने के लिये किया जाने लगा। इस लाभांश को भी पुनः निवेश कर दिया जाता था ताकि लाभांश से भी लाभ प्राप्त किया जा सके। इस क्रियाकलाप में नवोदित मध्यम वर्ग अग्रणी रहा; क्योंकि व्यापार-वाणिज्य की प्रगति का सर्वाधिक लाभ इसी वर्ग ने उठाया था और जिसके कारण उसके पास पूँज का संचय होता जा रहा था। इस वर्ग के पास व्यवसायिक बुद्धि की कमी न थी। अतः वह लाभ कमाने की दृष्टि से नये-नये व्यवसायों में पूँजी का निवेश करने लगा।

पन्द्रहवीं सदी के भौगोलिक अनुसन्धानों के फलस्वरूप यूरोपवासियों को अमेरिका के विशाल महाद्वीप की जानकारी मिली; पूर्वी देशों की ओर जाने वाले सामुद्रिक मार्ग का पता चला, अमेरिका में उपनिवेश स्थापित किये जाने लगे; पूर्वी देशों में व्यापारिक कोठियाँ कायम होने लगी, अफ्रीक के अज्ञात भागों का सर्वेक्षण किये जाने लगा और कालान्तर में आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड आदि का भी पता लगाया गया। इन नवीन खोजों ने यूरोप के महाद्वीपीय व्यापार का स्वरूप ही बदल दिया। अब उसका स्वरूप अन्तर महाद्वीपीय हो गया। इस नये स्वरूप के फलस्वरूप निर्यात की जाने वाली वस्तुओं की माँग में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई। जबकि सामन्ती व्यवस्था के अन्तर्गत कृषक तथा कारीगर स्थानीय आवश्यकता के अनुसार ही उत्पादन करते 4 थे कारीगर अथवा शिल्पी लोग अलग-अलग श्रेणियों (गिल्ड) में संगठित होते थे और श्रेणियों के अनुशासन में रहते हुए ही उत्पादन करते थे और वस्तुओं को बेचते थे। दूसरे शब्दों में यूरोप की अर्थव्यवस्था इन श्रेणियों पर आधारित थी। इस व्यवस्था में प्रतिस्पर्धा और प्रतियोगिता का कोई स्थान न था। यह ठीक है कि इन श्रेणियों के कई सदस्य काफी सम्पन्न थे फिर भी उन्हें पूँजीपति कहना उचित नहीं होगा क्योंकि वे तथा उनके परिवार के कई सदस्य अपने हाथों से उत्पादन करते थे। कृषि व्यवस्था का भी यही हाल था। भूमिपति दासों से कृषि कर्म करवाते थे और बदले में उनको भरण-पोषण लायक हिस्सा दे देते थे।

परन्तु सोलहवीं सदी के आते-आते स्थिति में बदलाव आने लगा। श्रेणी पर आधारित उत्पादन प्रणाली चरमराने लगी; क्योंकि बढ़ती हुई माँग को पूरा करना उसके लिये कठिन हो गया। ऐसी स्थिति में कुछ साहसी धन सम्पन्न लोगों ने अधिक मुनाफा अर्जित करने की दृष्टि से पहले तो विभिन्न श्रेणियों के उत्पादन को थोक में खरीदना शुरू किया और इस माल को ऊँचे दाम पर बेचने की व्यवस्था की। फिर उन्होंने कारीगरों को कच्चा माल तथा औजार देकर उनसे उत्पादन करवाना शुरू किया। इस काम के लिये उन्होंने ग्रामीण कारीगरों एवं दस्तकारों को चुना, जो श्रेणियों के नियम कायदों से मुक्त थे। यहाँ एक बात यह ध्यान देने योग्य है कि उपनिवेशों की स्थापनाँ के प्रारम्भिक दौर में वस्तुओं की गुणवत्ता का सवाल उतना महत्त्वपूर्ण नहीं था जितना कि उनकी उपलब्धता का था। उदाहरणार्थ, लोहे की कीलें, कुल्हाड़ियाँ, आरे, बरमे आदि को ही ले। जंगलों को साफ करने, छोटी नौकाओं को बनाने अथवा माल ढोने की गाड़ियाँ बनाने आदि के लिये उपनिवेशियों को इस प्रकार के सामान की व्यापक पैमाने पर और तत्काल उपलब्धता अधिक महत्त्वपूर्ण थी। वैसे भी, देहाती कारीगरों के द्वारा बनाई जाने वाली वस्तुएँ एवं उपकरण घटिया किस्म के नहीं होते थे। यहीं से प्रतिस्पर्धा का दौर शुरू होता है जो श्रेणी व्यवस्था के प्रतिकूल बात थी। परन्तु इस

समूचे क्रियाकलाप में पूँजी निवेश कर कारीगरों द्वारा तैयार माल को बेचकर भारी मुनाफा कमाने में सफल रहे। श्रम का विक्रय, प्रतिस्पर्धा और बड़े पैमाने पर उत्पादन और निजी लाभ इसी नई व्यवस्था के मुख्य लक्षण थे। इसी को प्रारम्भिक पूँजीवाद कहते हैं।

खनिज उद्योग के विकास ने पूँजीवादी व्यवस्था को आगे बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया। श्रेणी पद्धति के अन्तर्गत बड़े पैमाने पर खनिजों का दोहन करना सम्भव न था। विभिन्न उद्योगों में टिकाऊ और मजबूत उपकरणों की माँग बढ़ रही थी। लोहे के उत्पादन की वृद्धि ने इस माँग की पूर्ति की। अब पहले की अपेक्षा बड़ी-बड़ी भट्टियाँ उपयोग में आने लगी जिनमें पहले कच्चा लोहा तैयार किया जाता था; जिससे फिर सामान्य लोहा और इस्पात प्राप्त किये जाते थे। सोने, चाँदी, ताँबे, टिन, सीसे जैसी धातुओं का उत्पादन भी बढ़ने लगा। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिये बड़े-बड़े जहाजों की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी जिसके परिणामस्वरूप जहाज निर्माण एक महत्त्वपूर्ण उद्योग के रूप में स्थापित हो गया। छापाखाना के आविष्कार के बाद पुस्तक व्यवसाय भी पनपने लगा।

व्यवसायों की वृद्धि के साथ-साथ व्यवसाय पद्धतियों में सुधार की तरफ भी ध्यान दिया गया। परिणामस्वरूप अधिक और अच्छे बैकों; नये प्रकार की कम्पनियों, बीमा प्रणालियों, शेयर बाजारों (स्टाफ ऐक्सचेंजों); नाप-तोल की अधिक परिशुद्ध प्रणालियों और बहीखाते रखने की सुधरी हुई पद्धतियों का विकास हुआ। वस्तुतः आधुनिक पूँजी तन्त्र में इतना अधिक व्यवसाय है कि उसका अधिकांश न सिक्कों द्वारा, न कागजी मुद्रा द्वारा अपितु बैंकों से लिये उधार पर चलता है। आधुनिक महाजनी (बैंकिंग) की जड़ें तो यद्यपि मध्ययुग के पिछले भाग में पड़ी थीं किन्तु आधुनिक पूँजी तन्त्र में महाजनी एक बड़ा व्यवसाय बन गया। बैंक अपने यहाँ जमा धन को दूसरे व्यवसायियों को, जिन्हें धन की आवश्यकता हो, उधार देने के काम में लाकर पूँजी तन्त्र को बढ़ाने में सहायक होते हैं।

समुद्र पार के व्यापार में भारी मुनाफे की सम्भावना थी, परन्तु इसके लिये बहुत अधिक धन की आवश्यकता थी। किसी एक व्यक्ति के लिये इस आवश्यक पूँजी को जुटाना सम्भव न था। इसलिये कुछ महत्वाकांक्षी लोगों ने एक तरह का व्यापार संगठन (जौइंट स्टाफ कम्पनी) बनाया जिसने उन्हें हजारों लोगों की बचतों को एकत्र करने की क्षमता दे दी। इन विनियोक्ताओं को अपनी बचतों के बदले कम्पनी की पूँजी में हिस्से (शेयर) दिये जाते थे। जितने शेयर के वे मालिक होते, उनकी संख्या के अनुपात में उन्हें लाभ मिलता। शेयर होल्डर मिलकर कम्पनी के संचालक मण्डल (डायरेक्टरों का बोर्ड) का निर्वाचन करते, जो कम्पनी का प्रबन्ध करता था। 1600 ई. में स्थापित "ईस्ट इण्डिया कम्पनी" इसी प्रकार की एक जौइंट कम्पनी थी। इन्हीं जौइंट कम्पनियों ने आगे चलकर "निगम" (कार्पोरेशन) को जन्म दिया।

समुद्री यात्राओं में कई बार बड़े-बड़े जहाज भी नष्ट हो जाते थे। जहाज के साथ उस पर लदान किया गया सामान भी डूब जाता था। इससे व्यापारिक कम्पनियों तथा जहाज मालिकों को भारी नुकसान उठाना पड़ता था। इस विपदा से निपटने के लिये बीमा कम्पनियों का जन्म हुआ। इसके अन्तर्गत जहाज का मालिक एक वार्षिक राशि जो प्रीमियम कहलाती है, बीमा कम्पनी को देता है। बदले में यदि उसका बीमाशुदा जहाज नष्ट हो जाये, तो कम्पनी उसके नुकसान की भरपाई करती है। चूंकि एकाध जहाज ही डूबते थे, अतः अन्य जहाजों की एकत्र बीमा राशियों से नुकसान की भरपाई करना सरल था। बीमे का विचार आधुनिक काल के आरम्भ में विकसित हुआ। जोखिम को कम करके बीमे ने प्रारम्भिक पूँजीवाद को संरक्षण प्रदान किया।

आरम्भिक पूँजीवाद ने खेती के स्वरूप को भी बदल दिया। इसके लिये इंगलैण्ड का उदाहरण देना उचित होगा क्योंकि इंगलैण्ड पूँजीवादी विकास का क्लासिकी नमूना प्रस्तुत करता है। पहले कृषि उपज को लगान के रूप में

लिया जाता था, अब लगान के लिये पैसा माँगना शुरू कर दिया। अधिकांश भूमिधारी या पट्टेदार (टेनैंट) पैसे के रूप में ऊँचे लगान चुकाने में समर्थ नहीं थे और उनसे वे जमीनें छिन गईं; जिन्हें वे ठेकों पर जोतते थे। पर्याप्त वर्षा और नमी के कारण इंगलैण्ड में हरे-भरे चराहगाहों का प्राचुर्य था। सदियों से इंगलैण्ड के लोग भेड़ों के पालन और ऊन के निर्यात से खूब धन कमाते आये थे। ऊनी वस्त्रों की माँग बढ़ने से ऊन ज्यादा मँहगा हो गया और इसलिये पन्द्रहवीं सदी के अन्त तक अंग्रेज व्यापारियों ने ऊनी कपड़े के उत्पादन के लिये अपनी खुद की फैक्ट्रियाँ बनाना शुरू कर दिया। ऊन की माँग बढ़ती गई और अंग्रेज भूस्वामियों ने किसानों को उनकी जमीनों से बेदखल करना शुरू कर दिया। इसके बाद उन्होंने अपनी जमीन की बिखरी पट्टियों को मिलाकर बड़ी-बड़ी जायदादें बना ली और खेती की उपज की अपेक्षा भेड़ें पालना अधिक आरम्भ कर दिया। चूँकि ऐसे भूमिपतियों ने अपनी इन चरागाह भूमियों को चारों ओर बाड़ों से घेर लिया था, इसलिये यह प्रथा "बाड़ आन्दोलन" कहलाती है। इसके तहत कभी-कभी तो पूरे के पूरे गाँवों को नष्ट कर दिया जाता था और इस तरह जमीन छिनने से बर्बाद हुए किसान मजदूरी की तलाश में शहरों का रास्ता पकड़ते थे। उद्योगपति इन्हें कम-से-कम मजदूरी देकर अपने कारखानों में रख लेते थे और उनके श्रम का लाभ उठाकर अपनी पूँजी की वृद्धि में जुटे रहते थे। श्रमिकों के शोषण द्वारा अर्जित लाभ ने पूँजीवाद के विकास में महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया। सोलहवीं सदी के सुप्रसिद्ध अंग्रेज विद्वान् टामसमोर ने लिखा था कि, "इंगलैण्ड में भेड़ें लोगों को खा रही हैं।" अठारहवीं सदी के मध्य तक इंगलैण्ड में कृषक समुदाय का अस्तित्व समाप्त हो गया। अब जमींदार लोग अपनी जमीनें पूँजीपति फार्मरों को लगान पर देने लगे। ये फार्मर लोग दैनिक मजदूरी के आधार पर मजदूरों से काश्त करवाने लगे। इस प्रकार, इंगलैण्ड में कृषि में पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली का वर्चस्व कामय हो गया।

नीदरलैण्ड में सामन्ती अधिकारों की समाप्ति के बाद, छोटी-छोटी जमीनों की संख्या बढ़ गई। इनमें से अधिकांश बुर्जुआ वर्ग (मध्यम वर्ग) के हाथों में आ गई। यह वर्ग अपनी जमीनें अल्पकालीन अवधि के लिये खेती के लिये अन्य लोगों को नकद लगान पर देने लगा। खेती करने वाले को जमीन के मालिक के निर्देशानुसार नवीन उपकरणों तथा पद्धतियों से कृषि कार्य करना पड़ता था। बाद में सिंचाई के साधनों की समुचित व्यवस्था से कृषि उद्यम मुद्रा अर्थव्यवस्था की सीमा में आ गया। क्योंकि अधिक उत्पादन के लिये अधिक पूँजी निवेश जरूरी हो गया। कृषि के क्षेत्र में होने वाले इन परिवर्तनों के कारण इंगलैण्ड, हालैण्ड आदि देशों में पूँजीवाद का तेजी के साथ विकास हुआ और ये देश यूरोपीय अर्थव्यवस्था में प्रभावशाली बनते गये जबकि स्पेन और पुर्तगाल जैसे देश जो पहले काफी धन-सम्पन्न देश थे, अब पिछड़ते गये। क्योंकि इन देशों में कृषि तथा औद्योगिक उत्पादन को पूँजीवादी व्यवस्था में ढालने का प्रयास ही नहीं किया गया 2

3 पूँजीवाद के विकास में वाणिज्यिक क्रान्ति का योगदान डॉ. पार्थ सारथि गुप्ता का मानना है कि सोलहवीं शताब्दी में यूरोप में व्यापार के क्षेत्र में अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए जिनमें मुख्य थे- अंतः क्षेत्रीय व्यापार में वृद्धि, स्थानीयतावाद की समाप्ति, समुद्रपारीय व्यापार का विकास, बाजार का व्यापक और बढ़ता हुआ प्रभाव और नये प्रकार के व्यापारिक संगठनों का विकास। वाणिज्यिक क्रान्ति इन्हीं परिवर्तनों का परिणाम थी। इसके परिणामस्वरूप व्यापार-वाणिज्य का क्षेत्र अत्यधिक व्यापक हो गया। व्यापार-वाणिज्य के विकास ने पूँजीवाद के विकास में योगदान दिया।

निष्कर्ष - सोलहवीं एवं सत्रहवीं शताब्दियों में व्यापार-वाणिज्य के विकास के साथ-साथ यूरोपीय देशों में बड़े पैमाने पर उन्नत किस्म की मुद्रा का प्रचलन बढ़ा। विभिन्न प्रकार के भुगतान करने में मुद्रा का अधिकाधिक प्रयोग किया जाने लगा। ऋण व्यवस्था को व्यापक एवं सुगम बनाने का प्रयास किया गया तथा लेन-देन के मामलों में हुंडी

(ड्राफ्ट) ऋण-पत्र (लेटर्स ऑफ़ क्रेडिट) तथा विनिमय-पत्रों को मान्यता मिलने लगी। इससे साख व्यापार (क्रेडिट ट्रेडिंग) में भी वृद्धि हुई। वस्तुतः मौद्रिक अर्थव्यवस्था में सुधार पूँजीवाद के विकास के लिये अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुआ। संचार-साधनों एवं परिवहन सेवाओं में सुधार ने भी पूँजीवाद को बढ़ाने में सहयोग दिया।इस प्रकार, पन्द्रहवीं सदी में प्रकट होने वाली पूँजीवादी व्यवस्था धीरे-धीरे परन्तु सुदृढ़ कदमों के साथ अपने विकास पथ की ओर अग्रसर होती गई। इसके विकास में अनेक कारकों का सहयोग रहा जिनका विवेचन विस्तार में किया जा चुका है। आज विश्व के अधिकांश देशों की अर्थव्यवस्था पूँजीवाद तथा उसके सिद्धान्तों पर निर्भर है। इस व्यवस्था का मूल और एकमात्र ध्येय अधिक-से-अधिक मुनाफा अर्जित करना रहा है।

संदर्भ

1. वंडरदैटवाजइंडिया ,पृ .19
2. डॉ .कैलाशचन्द्रजैन ,प्राचीनभारतीयसामाजिकएवंआर्थिकसंस्थाएं ,पृ .205-6
3. वैदिकइंडेक्स ,भाग .प्एपृ .471-73ऋग्वेद10 /155/3
4. मुकर्जी ,आर.के., हिस्ट्रीऑफइंडियनशिपिंग ,पृ .90
5. जातकजिल्दपीप.127-129
6. राधाकुमुदमुकर्जी : हिस्ट्रीऑफइंडियनशिपिंग ,पृ .82
7. रोमिलाथापर ,भारतकाइतिहास ,पृ .95
8. प्रो .श्याममनोहरमिश्रा ,प्राचीनभारतकाआर्थिकजीवन ,पृ .291
9. ओमप्रकाश ,प्राचीनभारतकाआर्थिकइतिहास ,पृ.108
10. आर.के .मुकर्जी ,हिस्ट्रीऑफइंडियनशिपिंग ,पृ .174
11. आर.सी .मजुमदार,दिक्लिासिकल ,पृ.598
12. नियोगी ,पुष्पा,इकनामिकहिस्ट्री ,पृ.174-176
13. नियोगी ,पुष्पा, इकनामिकहिस्ट्री ,पृ .146
14. आर.सी .मजूमदार ,दएजऑफइंपीरियलकन्नौज ,पृ .403